संपादकीय

ख़राब होती जा रही देश की माटी

लगता है कि 'देश की माटी सोना उगले, उगले हीरे मोती' की भावाभिव्यक्ति गाने तक ही सिमट कर रह जाएगी, क्योंकि देश की मिट्टी से कई महत्त्वपूर्ण तत्त्व विलुप्त होते जा रहे हैं। मिट्टी में पाए जाने वाले नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाशियम, आयरन, जिंक, मैग्नीशियम, सल्फर, कॉपर, जीवांश कार्बन, पीएच आदि तत्त्व फसलों व पौधों के लिए आवश्यक हैं। उत्तर भारत के कृषि प्रधान राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि की मिट्टी में नाइट्रोजन की कमी 90 से 100 प्रतिशत तक अंकित हुई है। नाइट्रोजन पत्तियों को हरा रखता है। इसकी कमी होने पर पत्तों में पीलापन छा जाता है, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बाधित होती है, तना अकड़ जाता है, वह भोजन संवहन और एकत्रीकरण में सक्षम नहीं होता और अततः फसलों का विकास अवरुद्ध हो जाता है। इसी तरह यहाँ की मिट्टी में 90 से 97 प्रतिशत तक फॉस्फोरस का अभाव पाया गया है। फॉस्फोरस की कमी होने पर जड़ों को मजबूती नहीं मिलती। वे छोटी रह जाती हैं, जिस कारण पौधे कमजोर होते हैं। हवा के झोंके लगने पर गिर जाते हैं। पोटाशियम की कमी 65 से 97 प्रतिशत तक मिली है। इसकी कमी से फसलें, पेड़-पौधे बीमारी की चपेट में जल्दी आ जाते हैं, कीड़े-मकोड़ों का आक्रमण तेज हो जाता है, क्योंकि पौधों के पास प्रतिरोधक क्षमता नहीं होती। कार्बन की कमी 75 से 99 प्रतिशत तक मापी गई गई है। इस प्रकार पोषक तत्त्वों के अभाव में उर्वरा शक्ति क्षीण होती जा रही है, फसलों का उत्पादन कम और लागत दिनोंदिन बढती जा रही है। रासायनिक उर्वरकों के अत्यधिक प्रयोग तथा फसल-चक्र का सही तरीके से पालन नहीं करने से ऐसी स्थिति आई है।

पूरे देश की बात नहीं, परंतु सारण जिले को नमूना के तौर पर लें, तो पिछले तीन साल में लगभग 25-30 प्रतिशत पेड़ सूख गए हैं। सूखने का कारण 2020 में आई बाढ़ को माना गया, लेकिन 2021 और 2022 में भी पेड़ों का सूखना जारी रहा। दहाड़ पहले भी आता था, पर इतने सारे पेड़ तो क्या, छिटपुट दो-चार पेड़ भी नहीं सूखते थे। आरंभ में लोगों ने यह भी अनुमान लगाया कि हो-न हो, नेपाल से आए पानी में कुछ ऐसे रासायनिक तत्त्व उपस्थित रहे हों, जिनके कारण पेड़-पौधे बड़ी मात्रा में सूख रहे हों। सूखने का क्रम तीसरे साल भी जारी रहा, तब अन्य कारणों पर ध्यान देना आवश्यक लगा। वैसे तो कृषि और बागवानी के कार्य के लिए मिट्टी का नियमित परीक्षण उपयोगी है, जिसके लिए बजाप्ते सरकारी प्रावधान भी है, पर साधारण किसान और कृषि विभाग क्षेत्रवार जाँच के झमेले में नहीं पड़ना चाहता। फलतः किसान आँख मूँदकर खेती करते हैं, पर ये नहीं आकलित कर पाते कि जमीन के लिए कौन-सी फसल उपयुक्त रहेगी, मिट्टी में किन-किन पोषक तत्त्वों का अभाव है और कौन-कौन सी खाद जरूरी है। विशेष रूप से जाने-समझे बिना परंपरा से प्रचलित फसलों-पेड़ों को लगाया जाता है, चलताऊ उर्वरकों का भी उपयोग किया जाता है, फलतः अपेक्षित उपज नहीं होती।

सामान्य समझ है कि गोबर की खाद, कम्पोस्ट, हरी खाद के उपयोग से मिट्टी में कार्बनिक व जरूरी तत्त्व बढ़ाए जा सकते हैं। यों तो खेती और पशुपालन सदियों से एक दूसरे पर आश्रित रहे हैं, किंतु खेती की ही तरह पशुपालन से लोगों का मोहभंग हो गया है। परिणाम यह है कि गोबर और मूत्र की खाद कम बन रही है, फिर उनकी आपूर्ति कहाँ से पूरी होगी? इसी प्रकार लकड़ी और नरम जलावन की जगह गैस के बढ़ते प्रयोग के कारण घर-घर में जब राख बन ही नहीं रही तो इनका खेतों में उपयोग कैसे संभव होगा। वैकल्पिक खेती वाले रीति-रिवाज के अंतर्गत हरित खाद यथा ढैंचा, सनई, मूँग जैसी फसल बोने और बाद में जुतवा देने से पैदावार बढ़ती है। दलहन-तेलहन की फसल साल में एक बार अवश्य बोनी चाहिए। जैविक खाद के प्रयोग से खेत की उर्वरा शक्ति को पुनः प्राप्त किया जा सकता है। एक अनुमान के मुताबिक देश में लगभग 75000 हेक्टेयर क्षेत्र में जैविक खेती हो रही है। इसके अतिरिक्त भी छिटपुट जैविक खेती होती है। त्रिपुरा, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखंड, जम्मू-कश्मीर जैसे राज्यों में जैविक खेती की स्थिति दिन-प्रति-दिन सुव्यवस्थित होती जा रही है।

जैविक खेती के उदेश्य से पशुपालन के प्रति आकर्षण उत्पन्न कर लेना सहज हो सकता है, यद्यपि आजकल का कृषि-कार्य जुताई-बोआई से लेकर कटाई-पिटाई तक मशीन केंद्रित है। किसान स्थानीय रूप से उपलब्ध जैविक संसाधनों का उपयोग थोड़ा-बहुत परंपरागत ज्ञान के आधार पर और कुछ नए चलन के कारण कर रहे हैं। स्थानीय खाद, कृषि-जीवांश, जैविक अवशिष्ट और रासायनिक की जगह जैविक कीटनाशकों का प्रयोग लोकानुभव का निचोड़ है, जिसे समयानुरूप अपनाते जाने की जरूरत है।